आधी से एक ग्राम की मात्रा में बच्चों को पिलायी जाय तो उनकी ठंढ लगने से होने वाली परेसानियाँ मिट जाती है। गला साफ हो जाता है। इसका प्रयोग बाल का झरना, पकना पर किया जाता है। इसके लिए रस लगाया जाता है। इसके रस में तेल पकाकर लगाया जाता है। नीम और आँवला के साथ खिलाया भी जाता है। कटे–फटे पर इसका रस लगाने से घाव ठीक होता है।

इसकी व्यवसायिक मांग बाजार में है। इसके घनसत्व को बनाकर बेचने से लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार लायी जा सकती है। इसके सूखे पौधे भी बाजार में बिकते हैं।

37. कलिहारी (GLORIOSA SUPERBA)

यह अति दिव्य लता जाति की औषधि वेदकाल से ही अपने प्रभाव से मनुष्य को प्रभावित करते रहा है। इसलिए इसके दोहन अधिक हुए हैं। परन्तु इधर इसकी खेती जहां–तहां हो रही है। कलिहारी दो प्रकार की पाई जाती है। एक का कन्द गोल होता है। उसको स्त्रीवृक्ष कहते हैं। दूसरे का लम्बा और जुड़ा हुआ होता है, इसको पुरुष वृक्ष कहते हैं। इसक`पत्ते कचूर के पत्ते जैसे परन्तु पतले होते हैं। इसके फुल लाल, पीले और अग्नि शिखा की तरह होते हैं। इसके हर फुल में छः पंखुड़ियां होती है। इसकी छाल पतली ढीली और बादामी रंग की होती है। इसके पत्ते बर्च्छी के आकार के होते हैं। इसका कन्द शकरकन्द के जैसा होता है।

गुण प्रभाव : आयुर्वेदिक मत से यह उपविष है। यह तीता, कसैला तथा कटु रस युक्त पदार्थ है। यह कृमिनाशक, दस्तावर, विष–निवारक और गर्भघातक है। यह वस्तिशुल को दूर करता है। कोढ़, बवासीर, शोष की अच्छी दवा है।

इस पौधे की प्रशंसा रामायण की कथा से भी जुड़ती है, कहते हैं कि जब लक्ष्मण को मेघनाद ने शक्ति वाण से घायल कर दिया तब रावण के राजवैद्य शुषेन ने विशल्या नामक औषधि को लेप कर, भीतर छिपी हुई शक्ति वाण को निकाल दिया था। कलिहारी विशल्यकरणी हो सकता है। आज भी जंगली आदिवासी लोग जब उनके पैर इत्यादि में काटा चूभकर उसी में रह जाता है या कोई विजातीय द्रव्य शरीर में रहता है तो उसे निकालने के लिए दही के साथ इस औषधि को बांधते हैं। जिससे काटा इत्यादि सभी विजातिय पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। इसलिए इसकी रामायण की विशल्या से तुलना उचित है। रामायण में इसकी पहचान के संदर्भ में कहा गया है कि यह औषधि अग्नि शिखा की भांति चमकता था। कलिहारी का एक नाम अग्निशिखा भी है। शतावरी, कलिहारी, दन्तीमूल, बच्छनाग और पाषाण भेद इन सब औषधियों को समान भाग लेकर, पीसकर, पेड़ु और पेट के उपर लेप करने से मूढ़ गर्भ अर्थात् मरा हुआ गर्भस्थ शिशु निकल जाता है। कंठमाला, कर्णरोग और चर्मरोग पर यह बहुत लाभदायी है। इस प्रयोग से भी कलिहारी विशल्यकरणी है ऐसा शिद्ध होता है। यह एक उपविष है इसे शोधन करके ही व्यवहार में लेना चाहिए।

शोधन विधि : जब इसमें फुल आ जाता है तब उसे उखाड़ कर कन्द को छोटा–छोटा टुकड़ा करके दही में डाल देना चाहिए। दही में थोड़ा नमक मिला देना चाहिए। रात भर दही में रहने दिया जाय। सुबह निकाल कर धुप में सुखाना चाहिए। इस प्रकार इसे 5 से 7 बार करना चाहिए तब शुद्ध होता है। तब यह इतना उपयोगी बन जाता है कि यदि किसी आदमी को काला नाग काटता है, तब उसे 1/4 से आधी ग्राम तक खिला देने से विष आसानी से उतर जाता है।

मात्रा : शुरु–शुरु में निर्देशित बिमारियाँ दूर करने के लिए एक ग्राम का दसवां भाग (60 से 100 मि. ग्रा.) देना चाहिए। कुछ दिनों बाद इसे आधी ग्राम तक बढ़ाकर दी जा सकती है।

आर्थिक दृष्टि से कलिहारी की खेती अति लाभदायक है। इसकी मांग विश्व के बाजार में है। उपविष होने के नाते यह आशु गुणकारी है तथा थोड़ी मात्रा में प्रयुक्त होने के कारण भी आधुनिक लोगों के लिए अपनाने योग्य है। सरकारी तंत्र के खाते में यह दुर्लभ है। भारत में कुछेक सरकारी गैर सरकारी प्रयास इसके उत्पादन के लिए चल रहा है। अतएव इसकी खेती करना लाभदायी है। यह दक्षिण भारत सहित बिहार, झारखण्ड में भी उपलब्ध है। इतः इसकी खेती यहाँ की जा सकती है।

37. कलिहारी (GLORIOSA SUPERBA)

38. मजीठ (RUBIA CORDIFOLIA)

40. असगंध (WITHANIA SOMNNIFERA)

39. वाय बिड़ंग (EMBELIA RIBES)

38. मजीठ (RUBIA CORDIFOLIA)

यह हमेशा हरी रहने वाली वर्षजीवी और पराश्रयी झाड़ी होती है। इसकी जड़ बहुत लम्बी होती है। उसपर लाल रंग की पतली छाल रहती है। इसकी डालियां बहुत लम्बी उभर–खाबर होती है। इसमें पत्ते चार–चार लगते हैं। इसके फुल छोटे और सफेद होते हैं। जो झुमको में लगते हैं। इसके फल मटर के समान होते हैं। इसकी जड़े शुरु में ललाई लिए भूरे रंग की होती है। इसको तोड़ने से इसके अन्दर लाल रंग का गर्भ दिखाई पड़ता है।

गुण एवं प्रभाव : यह काषाय रस की गरम औषधि है। यह मधुर रस की भी है। यह आवाज को शुद्ध करने वाली तथा सुन्दरता बढ़ाने वाली है। विष, कफ, सुजन, योनी रोग, नेत्र रोग, कर्ण रोग, कुष्ठ, रधिर विकार, विसर्प, व्रण एवं प्रमेह को नष्ट करने वाली है। यह आंख के रोग, सूजन, ज्वर, कामला, पक्षाघात को दूर करती है तथा वात पित्त को नष्ट करती है। इसका फल प्लीहा को ठीक करता है। यह वात पित्त के रोगों को दूर करता है। इसमे स्तंभक, पौष्टिक, माहवारी के समय होने वाली वेदना नाशक गुण भी है। इसकी प्रधान क्रिया मस्तिष्क और मज्जातन्तुओं पर होती है। इसकी थोड़ी मात्रा सम्पूर्ण शरीर में शान्ति पैदा करती है। परन्तु अधिक मात्रा में यह मस्तिष्क में विभ्रम पैदा करती है। यह गर्भाशय को संकुचित कर उसके दर्द को मिटा देती है और मासिक धर्म साफ कराती है। इसकी त्वचा पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसके देने से त्वचा के रोग दूर होकर त्वचा निर्मल हो जाता है।

मात्रा : एक से दो ग्राम की मात्रा प्रतिदिन दी जा सकती है। यदि किसी प्रकार की परेसानी समझ में आने लगे तो इसकी मात्रा आधी कर देनी चाहिए। सर्वप्रथम आधी ग्राम से शुरू करनी चाहिए।

व्यवसायिक दृष्टि से यह अति उपयोगी पौधा है। इसका व्यवहार समस्त भारत सहित समस्त देश करता है। इससे रंग भी निकाला जाता है। इसकी बाजार में मांग है। अतः इसकी खेती आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है।

39. वायविड़ंग (EMBELIA RIBES)

इसकी झाड़ी होती है। इसकी डालियां खुरदरी और बहुत गांठो वाली होती है। इसके फूल सफेद होते हैं। इसका फल काली मीर्च के समान होती है और वे गुच्छों में लगती है। जब ये सुखते हैं तब इसका व्यवहार होता है।

गुण प्रभाव : यह अति उत्तम कृमिनाशक औषधि है। इसका प्रभाव गरम है। भूख को बढ़ाता है। अग्नि को नियंत्रित करता है। कृमि, शुल, अफारा, उदर रोग, प्लीहा, अजीर्ण, श्वास खांसी, ह्रदय रोग, विष विकार, आम, मेद रोग और प्रमेह को दूर करती है। आयुर्वेद इसे सर्वरोग संशमनी माना है। इसके लिए इसको मुलेठी के साथ सेवन किया जाता है। विडंग 100 ग्राम मुलहठी 100 ग्राम दोनों का चूर्ण बनाकर उसे 3 से 5 ग्राम प्रतिदिन सुबह में सेवन करना चाहिए। इसके सेवन से दोषों के विकृत होने तथा गुणों के विकृत होने की वजह से होने वाले सभी कठिनाइयां मिट जाती हैं। इसके सेवन से निदेशित सभी बीमारी दूर हो जाती है। किसी भी प्रकार की भयानक से भयानक बिमारियों का उपद्रव यह दूर कर देती है। यह सभी संस्थान के रोगों को दूर करती है। कोई ऐसा रोग नहीं है जहां पर इसके व्यवहार से लाभ नहीं मिलता। अतः सभी रोगों की दवा हो जाती है। कृमिनाशक क्रिया के लिए इसे 2 से 5 ग्राम चूर्ण प्रतिदिन दही के साथ दिया जाता है तथा दस्तावार दवा भी दी जाती है। कुछ दिनों के प्रयोग से कृमि नष्ट हो जाते हैं। इसके अधिक प्रयोग से पेशाब लाल हो जाता है। स्याहजीरा और वाय विड़ंग दोनों के बारीक चूर्ण को यदि मधु से बच्चों को प्रतिदिन खिलाया जाय तो उनके सभी रोग मिटते हैं। सुखड़ा रोग के लिए यह अतिउत्तम योग है। लकवा वात रोग में इसको दुध के साथ उबालकर पिलाया जाता है।

मात्रा : इसकी मात्रा 2 से 3 ग्राम है। पानी या दुध के साथ निदेशित सभी बिमारियों पर इसको दिया जाता है।

आर्थिक दृष्टि से इसकी खेती अति लाभदायक है। यह बहुवर्षायु पौधा है। एक बार लगा देने से बहुत साल चलता है। इसकी मांग विश्व भर में है।

40. असगंध (WITHANIA SOMNNIFERA)

यह वर्षा ऋतु में उपजता है। कहीं–कहीं यह बारहोमास पाया जाता है। इसके पौधे दो से तीन फीट तक ऊंचे होते हैं तथा इसमें कई शाखायें निकलती हैं। इसमें लाल रंग के फल लगते हैं। जो बरसात के अन्त में तथा जाड़े के शुरु में दिखाई पड़ते हैं। इसकी जड़ एक फुट तक लम्बी, मुलायम तथा कड़वी होती है।

गुण प्रभाव : यह एक पौष्टिक औषधि है। बाजार में जो असगंध बिकती है वह यह है। यह थोड़ी नसीली होती है। औषधि के लिए इसके जड़ का प्रयोग किया जाता है। मज्जा तंतुओं पर इसकी अवसादक क्रिया होती है। लेकिन हृदय पर इसका ऐसा असर नहीं पड़ता है। इसकी नियंत्रित मात्रा लाभदायी होती है। इसकी जड़ धातु पौष्टिक, धातु परिवर्तक और कामोद्दीपक होता है। क्षय रोग, बुढ़ापे की दुर्बलता तथा गठिया में लाभजनक है। यह नींद लाती है तथा पेशाब की मात्रा बढ़ाती है। इसका प्रयोग तेल धृत पकाने में भी होता है। स्नायुशुल सहित सभी वात रोग में इसे दर्द निवारक दवा के रूप में व्यवहार किया जाता है।

मात्रा : 100 मि.ग्रा. प्रतिदिन से अधिक इसे नहीं देना चाहिए। दुध के साथ इसे देने से अधिक लाभ होता है। इसकी खेती की जा सकती है। यह बिकती भी है। इसका विश्व भर में बाजार है। इसे भारतीय जीनसेंग भी कहते हैं।

41. मालकांगनी (CELASTRRUS PANICULATUS)

यह लता जाति का एक पौधा है। यह समस्त भारतवर्ष में उपलब्ध है। इसकी लता मुलायम लाल और बदामी रंग की होती है। इसके पत्ते 2 से 5 इंच तक लम्बे और एक से तीन इन्च तक चौड़े लम्ब गोल और कंगुरेदार होते हैं। इनके फुल कुछ पिलापन लिए हुए हरे रंग के होते हैं। यह वैसाख और जेठ महिने में आते हैं। आषाढ़ सावन माह में इसके फलों के गुच्छे लगते हैं। पकने पर ये पिले रंग के हो जाते हैं। इसमें से बीज निकलता है।

गुण प्रभाव : यह बुद्धि और स्मरण शक्ति बढ़ाने वाली औषधियों में एक है। इसके बीज और तेल का व्यवहार किया जाता है। इसके तेल को शोधित कर लेने से ज्यादा गुणकारी हो जाता है। इसके लिए आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में इसको लेकर कोल्हु या इक्सपेलर के माध्यम से तेल निकाल लेना चाहिए। जितना तेल हो उतनी ही मात्रा में गाय का दुध और तेल के चौथाई शहद मिलाकर कड़ाही में डालकर आग पर चढ़ाना चाहिए। उबलते–उबलते जब दुध और शहद जल जाय तो उसे उतार कर छान कर रख लें। यदि संभव हो तो तेल के आठवें भाग के बराबर इसमें कबावचीनी, कपूर, तज और जायफल इन चारों वस्तुओं को समान भाग चूर्ण लेकर उस तेल में डालकर धृत से स्निग्ध मिट्टी के बर्तन में लेकर इसे जमीन के अन्दर या अनाज के अन्दर गाड़ दें। 21 दिन बाद निकालें और छान कर रख लें। इस तेल का प्रयोग बुद्धि वर्द्धन के लिए किया जाता है। इसके लिए इसके तेल में से प्रथम दिन एक बुन्द दूसरे दिन 2 बुन्द इस प्रकार क्रमशः 7 दिन तक सात बुन्द तक सेवन किया जा सकता है। इस तरह के कुछ दिन करने से मनुष्य श्रुतिधर हो जाता है। जो भी सुनता है वह भूलता नहीं है। इसके साथ ही वह रोग रहित तथा दीर्घायु को भी प्राप्त होता है।

यह वात एवं कफ दोष से उत्पन्न सभी रोगों को नष्ट करता है। अग्नि को प्रदीप्त करता है। मेघा और प्रज्ञाकारक है। यह किसी–किसी को सेवन के पश्चात पेट में जलन कराती है तथा भूख को कम कर देती है। इसके पत्ते का व्यवहार औरतों के मासिक धर्म को नियमित करता है। इसके बीज गरम कटु, चरपरे और रूक्ष होते है। यह क्षुधावर्द्धक, विरेचक, वमन कारक, कामोद्दीपक, मन एवं मस्तिष्क को बल देने वाले तथा वात और कफ को नष्ट करने वाले होते हैं। अपने गरम स्वभाव के कारण बीज भी किसी–किसी के पेट में जलन पैदा करते हैं। इसके लिए गरम किया हुआ ठंढा दुध सेवन करना चाहिए।

यह कफ को निकाल देता है और मस्तिष्क और यकृत को पुष्ट करने वाले होते हैं। जोड़ों के दर्द और पक्षाघात में भी इसका सफल प्रयोग किया जाता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के चिकित्सक इसके बीज से पाताल यंत्र के द्वारा निकाले गये तेल का व्यवहार वेरी–वेरी नामक बिमारी को मिटाने के लिए करते हैं। इस तेल का नाम ओलियम नाइग्रम

या ब्लैक तेल रखते हैं। इस तेल का प्रयोग मुत्रल औषधि के रूप में करते हैं। यह ज्ञान तंतुओं को उत्तेजना देता है तथा पसीना निकालने वाला होता है। इसलिए जिस किसी व्याधि में दवा का कोई असर नहीं पड़ रहा हों वहां पर इसको देने के साथ ही लाभ मिलने लगता है। इसे दूसरे दवाओं के साथ भी दिया जा सकता है। जलोदर के रोगियों पर इसका प्रयोग करते हैं तथा 10 से 30 बुन्द तक की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। यदि पसीना लाने के लिए इसका व्यवहार किया जाय तो 10 से 15 बुन्द व्यवहार करना चाहिए। पक्षाघात एवं सन्धिवात के रोगी को 10 से 15 बुन्द तक प्रतिदिन इसका सेवन दुध के साथ कराया जाय तो आश्चर्यजनक लाभ मिलता है। वात रक्त, आमवात और वात रोग में तथा चर्मरोग में इसका व्यवहार बहुत ही उपयोगिता पूर्ण तरीके से जंगली आदिवासी करते हैं तथा लाभ भी होता है। इसकी तेल की मालिस आम वात की पीड़ा को नष्ट करती है। इसके तेल के अतिरिक्त बीज का व्यवहार किया जाता है। इसके लिए एक बीज से शुरू किया जाता है और क्रमशः प्रतिदिन एक बीज बढ़ाते हुए पचासवें दिन 50 बीज का सेवन किया जाता है। इक्यावनवे दिन से एक बीज क्रमशः घटाते हुए एक बीज तक ला दिया जाता है। इसके साथ थोड़ी शोठ का चूर्ण देने से लाभ अधिक मिलता है। धानी के तेल को शोधन किये बिना उतना लाभ नहीं करता परन्तु पाताल यंत्र से निकाला हुआ तेल सभी निदेशित रोगों में सफलतापूर्वक प्रयुक्त होता है।

इसके जड़ का प्रयोग वैसी औरतों को कमर में बांधने के लिए किया जाता है जिसको हमेशा गर्भपात की बीमारी हो। इसके लिए इसके जड़ के चार अंगुल लकड़ी को लेकर कमर में बांध देना चाहिए। इसके प्रभाव से गर्भपात रूक जाता है। बच्चा होने के एक दो चार दिन पूर्व इसे खोल देना चाहिए।

पान में दो तीन बुन्द तेल मिलाकर प्रतिदिन दो–तीन बार खाने से नपुंसकता मिटती है। इसके साथ जर्दा का प्रयोग नही होता है। इसके तेल को गोमुत्र में पकाकर लगाने से सफेद कुष्ठ मिटता है। इसके तेल को पैर के तलवों पर मालिस करने से आँख की रोशनी बढ़ती है। इसके तेल का प्रयोग पहाड़ी आदिवासी लोग क्षय की अवस्था में भी सफलतापूर्वक करते हैं। इसके तेल को एक ग्राम की मात्रा में प्रतिदिन लेने से स्मरण शक्ति बढ़ती है।

मात्रा : तेल चौथाई ग्राम से एक ग्राम तक सेवन किया जाता है और बीज एक से पन्द्रह बीज तक सामान्य मात्रा है।

सावधानी : सेवन काल में किसी भी तरह की परेसानी की अवस्था में दुध घी का व्यवहार अधिक करना चाहिए। **व्यवसायिक दृष्टिकोण** से इसकी खेती अति उपयोगी है। इससे तेल निकालने के उद्यम का विकास होगा। पाताल यंत्र से इसका तेल निकाल कर अच्छी मात्रा में बेचकर धन कमाई जा सकती है। विश्व स्तर पर भी इसकी बिक्री संभावित है। चिकित्सा जगत को शुद्ध सुपक्व मालकांगनी ही नहीं मिलती इसलिए इस पर कम लोग ही ध्यान देते हैं। अतएव इसकी खेती आर्थिक दृष्टि से लाभकारी है।

42. सर्पगन्धा (RAUWOLFIA SERPENTINA)

समस्त भारत में उत्पन्न होने वाला यह पौधा जंगलों में भी होता है तथा इसकी खेती भी की जाती है। इसका पौधा 3 से 4 फीट तक उँचा वैंगन के पौधा से मिलता जुलता होता है। इसके उपर लाल फूल लगता है। इसके फल पकने पर बैगनी काले हो जाते हैं।

गुण प्रभाव :– यह कड़वी, कसैली, गरम, तेज और चरपरी होती है। यह कृमिनाशक तीनों दोषों में फायदा पहुंचाने वाली, सर्प तथा बिच्छु के विष को नष्ट करने वाली होती है। इस औषधि का प्रयोग पागलपन को दूर करने के लिए जमाने से होते आ रहा है। कुछ क्षेत्रों में इसे पागल की जड़ी के नाम से भी जाना जाता है।

इसका प्रयोग ज्वर निवारक औषधि के रूप में भी किया जाता है। अनिद्रा की यह अति उत्तम दवा है। यह उच्च्य रक्त चाप की दवा के रूप में व्यवहृत होता है। अनिद्रा, चिल्लाना, मन की कमजोरी के लिए इसको भृंगराज, पारसीक अजवायन, शंखपुष्पी, जटामांशी एवं वच के साथ बराबर मात्रा में लेकर उसे कूट कर इसकी एक ग्राम की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। जिससे बहुत लाभ मिलता है।

41. माल कांगनी (CELASTRRUS PANICULATUS)

42. सर्पगन्धा (RAUWOLFIA SERPENTINA)

43. पाषाण भेद (SAXIFRAGA LIGULATA)

44. हरिद्रा (CURCUMA LONGA)

मात्रा : इसको आधी से एक ग्राम तक प्रयोग किया जाता है। अन्य योग के साथ इसका व्यवहार किया जाता है। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती बहुत ही लाभदायी हैं इसका बाजार समस्त विश्व है तथा कीमती जड़ी–बुटियों में इसकी गीनती होती है। इसका क्षाराभ आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की औषधियों में शामिल है।

43. पाषाण भेद (SAXIFRAGA LIGULATA)

यह पत्थरों पहाड़ों के बीच उग आता है। पानी का स्थान जहाँ ज्यादा होता है। वहां पर यह अधिक हो जाता है। इसके पत्ते मोटे तथा स्वाद में कुछ खट्टे होते हैं। इसके जड़ के भाग को औषधि के लिए बाजार में भेजा जाता है। इसके पत्तों पर भी पौधे उग आने की प्रवृति रहती है। पत्थर चूर की यह एक जाति मानी जाती है।

गुण प्रभाव : यह स्नेहन, कफ नाशक, स्तंभक और मुत्रल होता है। पथरी रोग में यह दिया जाता है। पेसाब बहुत होकर पथरी धीरे धीरे गल जाती है। आँव के साथ होने वाले दस्त में यह लाभकारी है। इससे आँतो को उत्तेजना मिलती है। इसकी मात्रा 10 ग्राम तक पानी के साथ पिस कर पिलायी जाती है। इसे अधिक खाने पर भी कोई नुकसान नहीं होती। पत्थर चूर की एक और जाति है रेविडिया लीसी आइस। इसका लैटिन नाम है। इसकी तीसरी जाति है इरेरिया वक्सिफोलिया। ये तीनों कुछ न कुछ गुणधर्म के साथ मेल खाती है। तीनों में से जिसको जो मिलता है। वही पत्थर चूर समझकर व्यवहार करता है। तथा क्षारीय अम्लिय होने के कारण लाभप्रद होता है। इसमे पोषक खनिज तत्व अधिक है।

इसकी खेती करने पर इसके पौधों की ही बिक्री अधिक होगी। चुकि इसका हरा ही व्यवहार होता है। इसी जाति की कुछ प्रजातियां सलाद के रूप में भी खाई जाती है।

44. हरिद्रा (CURCUMA LONGA)

यह सर्वप्रिय जगत प्रसिद्ध पौधा है। इसका पौधा छोटा कोमल और वर्षजीवी होता है। इसकी खेती होती है। इसके पत्ते बहुत बड़े होते हैं। इसकी जड़ों में कन्द के रूप में हल्दी बैठता है। ये कन्द पीले रंग की होती है। इसका उपयोग मसाले के रूप में समस्त भारतवर्ष में होता हैं।

गुण प्रभाव : आयुर्वेद के अनुसार हल्दी, कटु, तिक्त, सौंदर्यवर्द्धक, गरम, रक्त शोधक और स्त्रियों के लिए अत्यधिक उपयोगी मानी गई है। यह कफ, वात, रक्त विकार, कोढ़, खुजली, प्रमेह, त्वचा के दोष, घाव, सुजन, पाण्डु रोग, कृमि, विष, पीनस, अरूची, पित्त दोष और अपचन को दूर करने वाली होती है। यह फोड़ों को भी पका देती है। तथा यकृत प्लीहा के लिए उपयोगी है। कफ का अधिक मात्रा में कही से भी निकलना यथा गला, नाक, चर्म से, तो यह बहुत अच्छी काम करती है। सर्दी के अन्दर बहुत लाभदायी है। इसकी धुंआ नाक से सुंघने तथा इसके काढ़ा का सेवन करने से कफ बाहर निकल जाता है तथा मस्तिष्क हल्का हो जाता है। सुजाक रोग में जब पेसाब गाढ़ा, वेदनायुक्त, बार–बार और थोड़ा–थोड़ा होने लगता है तब 5 ग्राम हल्दी और 5 ग्राम आंवला को कुटकर काढ़ा बनाकर पीने से तुरंत लाभ होता है। इस काढ़े से दस्त साफ होती है। पेशाब की जलन कम होती है। स्त्रियों के प्रदर रोग में एक ग्राम हल्दी तथा 1/4 ग्राम गुग्गुल एक साथ दिया जाता है। चर्म रोगों के लिए हल्दी बहुत उपयोगी वस्तु है। इन रोगों में भी आंवले के साथ पूर्ववत काढ़ा बनाकर देने से लाभ होता है। हल्दी का उबटन सौंदर्य की वृद्धि करता है। तथा चर्म के रंग को निखारता है। हल्दी को जलाकर कोयला बनावे। इसे कुटकर इसका चूर्ण घाव पर लगाने से घाव सुखता है। चोट पर हल्दी को पीसकर इसमें थोड़ा चूना मिलाकर लेप करने से जमा हुआ खून बिखर जाता है तथा आराम मिलता है। पेट के रोगों में भी यह अन्य औषधियों के साथ लाभकारी है। प्रमेह में इसके चूर्ण को देने से लाभ होता है। आधी ग्राम वाकुची के साथ इसका एक ग्राम चूर्ण प्रतिदिन लेने से विवाई जो हाथ पैर का फटना, चर्म का फटना कहलाता है, नष्ट हो जाता है। इधर कुछ आधुनिक चिकित्सक इसे कैन्सर पर भी गुणकारी मानते हैं। कैंसर की चिकित्सा इससे होती रही है।

मात्रा : आधी से एक ग्राम प्रतिदिन दुध या पानी से। **व्यवसायिक दृष्टि से** इसकी खेती बहुत ही लाभदायक है। यह औषधि के अतिरिक्त भोजन के मसाले के रूप में प्रयुक्त होता है। इसका बाजार संपूर्ण विश्व है। यह आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद है।

45. आमा हल्दी (वन हरीद्रा) (CURCUMA AROMATICA)

वनों में पाई जाने वाली हल्दी की जाति का ही पौधा है। इसके रूप रंग सभी हल्दी के सामान दिख पड़ते हैं। इसके जड़ में हल्दी से कुछ ज्यादा सुगन्ध है। इसकी भी कहीं–कहीं खेती की जाती है। औषधि में इसका भी बहुत ज्यादा प्रयोग होता है। सौंदर्य प्रशाधन के निर्माण में भी इसकी आवश्यकता बहुत अधिक है।

गुण प्रभाव : यह पौष्टिक है। इसका हल्वा अदरख जीरा एवं घी के साथ बनता है। इसके लिए इसे 100 ग्राम लेकर पीस कर चूर्ण बना लें। पुनः अदरख और जीरा 50 ग्राम लेकर सिल पर पीस ले। 100 ग्राम घी लेकर इन तीनों को आपस में भुजें। तथा 300 ग्राम चीनी और थोड़ा सा पानी मिलाकर फिर भुजते रहे। हल्वा जैसा हो जाय तो उतारकर ठंढा कर इसका सेवन करें। 2 से 3 ग्राम की मात्रा प्रतिदिन लेने से यह ताकतवर गुण दिखाता है। यह उदर के वायु को निकालता है। इसके लिए वायुनाशक और औषधियों में इसका मिश्रण कर प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग चोट मोच में सामान्य हल्दी से अधिक गुणकारी है। इसे सील पर दुध से पीस कर इसमें थोड़ा चूना और फिटकीरी कशीस, गेरू मिलाकर चोट मोच पर लेप करने से दर्द मिटता है। तथा रोगी को आराम होता है। इसका प्रयोग विभिन्न प्रकार के मन के रोगों में भी अन्य औषधियों के साथ करते हैं। इसको प्रतिदिन जलाने से प्रेतात्माये उस स्थान तक नहीं आती ऐसा विश्वास कुछ वन में रहने वालों का है। सर्प के काटने पर उस जगह पर ददोरा उत्पन्न करने के लिए इसे पीसकर दंसित स्थान पर छापते हैं।

मात्रा : 100 मि.ग्रा. से 500 मि.ग्रा. तक घी के साथ भुजकर। **आर्थिक दृष्टि से** यह अति उपयोगी पदार्थ है। इसकी खेती की जाय तो इससे आर्थिक लाभ होगी। इसका सौंदर्य प्रशाधन सहित औषधि उद्योग में मांग रहता है। यह दुर्लभता को भी प्राप्त कर रही है। अतः यह काफी कीमती वनती जा रही है।

46. वाकुची (PSORALEA CORYLIFOLIA)

इसके पौधे बरसात में बहुत पैदा होते हैं। ये एक से लेकर चार फीट तक ऊँचे होते हैं। इनकी डालियाँ सीधी होती है। इनके पत्ते ज्वार से मिलती जुलती होती है। इनके पत्तों पर हल्के काले रंग का विन्दु होता है। इनके फुलों का आकार तुलसी की मंजरी के जैसा दीख पड़ता है। इन फुलों में से बारीक और हरे रंग की फलियां निकलती हैं जो पकने पर काली पड़ जाती है। इन फलियों में से काले रंग की बीज निकलती है। जिनको वाकुची कहते हैं।

गुण प्रभाव : यह रस में तिक्त और पचने में कटु हो जाती है। यह धातु परिवर्तक है। कब्ज को भी दूर करती है। शीतल गुण प्रदान करने वाली, रूचिकारक कफ और रक्त पित्त को नाश करने वाली, हृदय को हितकारी तथा श्वास, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर और कृमियों का बिनाश करने वाली होती है। इसका फल पित्त जनक, चर्म रोग नाशक कफ और वात रोगों का नाशक, केशों को उत्तम बनाने वाला, कांति वर्द्धक, वमन, श्वास, कास, पेसाब की रूकावट, बवासीर, सुजन और पाण्डु रोग को दूर करता है। इसके जड़ का उपयोग मंजन में करने से यह दांतों को सड़ने से बचाता है। इसके एक दो पत्तों को पीसकर पिलाने से अतिसार में लाभ होता है। इसका सेवन अनैच्छिक वीर्य स्त्राव में चीनी या गुड़ के साथ करने से लाभ होता है। कुष्ठ में वाकुची और तील बराबर मात्रा में मिलाकर एक से 2 ग्राम प्रतिदिन यदि खाई जाय तो एक साल में सभी प्रकार के चर्म से संबंधित रोग दूर हो जाते है। यह गलित कुष्ट में भी लाभदायी है। इसके बीज के चूर्ण को खैर और आंवले के काढ़े के साथ प्रयोग किया जाय तो कुन्द के सामान लाल चर्म रोग दूर हो जायेगा। इसी से श्वेत कुष्ठ भी ठीक होता हैं । इसके बीज को यदि दो–तीन बार गोमुत्र में भिंगाकर सुखाकर चूर्ण किया जाय तो यह और उपयोगी होता है।

मात्रा : आधा से एक ग्राम तक इसका प्रयोग निदेशित सभी रोगों में करना चाहिए। आंवला या दूसरे औषधियों के साथ भी मिलाकर इसका प्रयोग किया जाता है।

सावधानी : इसका अधिक प्रयोग करने पर किसी किसी को चक्कर आता है। वैसी हालत में इसे कुछ दिन छोड़कर पुनः थोड़ी मात्रा में प्रयोग करनी चाहिए। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती उपयोगी है। इसकी माँग समस्त भारत सहित विश्व में है।

47. बबुई तुलसी (OCIMUM BASILICUM)

यह वनस्पति तुलसी की ही तरह होती है। इसके बीज और गंध तुलसी के ही समान होते हैं। इसके पौधे जब सुख जाते हैं तब इसका गंध और बढ़ जाता हैं इसका बीज जब पानी में भिंगता है तब उसमे ंलुआव बन जाता है। इसके पंचांग का अर्क खींचने से उनमें से उड़नशील पीले रंग का तेल निकलता है। जो पड़ा रहने पर जम जाता है।

गुण प्रयोग : यह तीक्ष्ण, कड़वी, रूचिकारक, अग्निवर्द्धक, कृमिनाशक और ज्वरनाशक होती है। यह हृदय और रक्त के रोगों में गुणकारी है। कफ वात रोग, धवल रोग, खुजली, जलन, वमन, कुष्ठ, वात और विष के विकारों को यह नष्ट करती है। यह तृषा दाह और सूजन को दूर करती है। यह मुत्रल, ऋतुस्त्राव नियामक एवं मस्तिष्क के रोग को दूर करती है। इसके रस को आँखों में टपकाने से आँखों की ज्योति बढ़ती है। दांत, कान, मस्तिष्क के दर्द में भी यह उपयोगी है। इसके रस में थोड़ा कपूर मिलाकर नाक में डालने से नाक से बहता हुआ खुन बन्द हो जाता है। यह कफ निःसारक और पसीना लाने वाली दवा है। पेचिस की बिमारी में 2 ग्राम बीज को मिश्री के साथ खाने से लाभ होता है। इसके बीज को पानी में डाल कर फुला दें। और उसे लुआवदार बनाकर पीये इससे खांसी में बहुत लाभ होता है। लुआव बनाने के लिए इसका 5 ग्राम बीज लिया जाता है। यही प्रयोग वीर्य को गाढ़ा करने तथा शीघ्रपतन की बीमारी तथा वीर्यदोष में भी लाभदायी है। इसके बीजों के लुआाव से बना ठंढई शान्तिदायक, गर्मी, कब्जियत और अन्दर का बवासीर नष्ट करता है। भूतोन्माद, थकावट, स्नायु रोगों में भी इसका प्रयोग लाभदायी है। सुखी खांसी में इसके रस को शहद के साथ देने से कफ छंटता है।

मात्रा : इसका स्वरस 5 से 10 ग्राम तक निदेशित सभी बिमारियों में दिया जाता है। इसका 25 ग्राम से 50 ग्राम तक पंचांग के काढ़ा को चाय जैसा बनाकर पिलाने से भी सभी रोगों में लाभ होता है। 5 ग्राम इसके बीज को मिश्री के साथ खाने से बलवर्द्धक, कामवर्द्धक गुण दिखलाता है। सांप के काटने पर इसका रस 25 ग्राम तक दो घंटे पर देना चाहिए। **आर्थिक दृष्टि से** इसकी खेती काफी उपयोगी है। इसके बीज की मांग बहुत है। पोषक होने के कारण यह शर्बत में व्यवहृत होता है।

48. कालमेघ (ANDROGRAPHIS PANICULATA)

यह एक क्षुप जाति की वनस्पति होती है। इसका पौधा एक से तीन फिट तक उँचा होता है। यह विशेषकर बंगाल के अन्दर बहुत पैदा होती है। कई लोग कालमेघ और चिरायता नामक वनस्पति को एक ही मानते है। परन्तु ये दोनों वनस्पतियां अलग–अलग है। यह औषध चिरायता की अपेक्षा बहुत हल्के दर्जे की होती है। चिरायता के बदले में इसे देने से उतना लाभ नहीं होता।

गुण–प्रभाव : कालमेघ कड़वा दीपन और कटु पौष्टिक होता है। इसमें ज्वर नाशक गुण है, परन्तु कुनैन के जैसा नहीं है। बच्चों के लिए यह औषधि विशेष लाभकारी है। सिर दर्द, अजीर्ण, अतिसार और साधारण ज्वर में इसको हींग, शोठ, मीर्च और पीपर के साथ देते हैं। इसके सारे पौधों का काढ़ा ज्वर में दिया जाता है। यकृत के रोगों को मिटाने के लिए यह अति उपयोगी है। यह कटु पौष्टिक है तथा भूख की वृद्धि कराता है। चर्मरोग में इसके साथ चित्रक एवं सत्यानासी का जड़ मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

मात्रा : इसका चूर्ण एक ग्राम तक या 10 से 15 ग्राम तक पौधे का काढ़ा प्रतिदिन देना चाहिए। इसकी खेती आर्थिक दृष्टि से लाभदायी है तथा सभी चिकित्सा पद्धतियों का भेषज उद्योग इसका व्यवहार करता है।